जैन एवं काण्टीय दर्शनों की समन्वयवादी शैली

डॉ० वशिष्ठ नारायण सिन्हा

जैन दर्शन भारतीय दर्शन की प्रमुख धाराओं में से एक है। उसी तरह काण्ट का चिन्तन पाश्चात्य दर्शन में मूर्धन्य है। जैन दर्शन प्राचीन माना जाता है जबकि काण्ट का दर्शन अर्वाचीन। फिर भी दोनों की पद्धतियाँ (Methodologies) एक जैसी ही हैं। हाँ! इतना अन्तर अवश्य है कि जैन दर्शन ने अपना समन्वयवाद तत्त्वमीमांसा के माध्यम से प्रस्तुत किया है, जबकि काण्ट ने ज्ञानमीमांसा के माध्यम से समन्वयवाद की प्रतिष्ठा की है।

जैन दर्शन

दर्शन में सत् (Reality) के सम्बन्ध में एक बहुत बड़ी समस्या यह है कि वह क्या है? वह सामान्य है अथवा विशेष, नित्य है अथवा अनित्य। इस समस्या के समाधान स्वरूप विभिन्न प्रकार के सिद्धान्त मिलते हैं, जैसे–बौद्ध दर्शन यह मानता है कि सत् विशेष है और अनित्य है, अद्वैत वेदान्त मानता है कि सत् सामान्य है और नित्य है। जैन दर्शन इन दोनों को एकांगी बताते हुए यह मानता है कि सत् या द्रव्य या पदार्थ सामान्य भी है और विशेष भी, नित्य है और अनित्य भी। ऐसा करके वह दोनों विरोधी मतों के बीच समन्वय स्थापित करता है। किन्तु ये मत-मतान्तर अपने-अपने प्रतिपादकों द्वारा जिन-जिन प्रक्रियाओं के माध्यम से प्रस्तुत किए गये हैं, उन्हें हम निम्न प्रकार से जान सकते हैं—

बौद्ध दर्शन

क्षणिकवाद बौद्धदर्शन का प्रसिद्ध एवं मौलिक सिद्धान्त है। इसके आधार पर ही इसके अनात्मवाद आदि सिद्धान्त विकसित हुए हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार क्षणिकता या परिवर्तनशीलता या प्रवाह ही सत्य है। यदि परिवर्तनशीलता सत्य है तो इसका मतलब है कि विशेष सत्य है। क्योंकि विशेष वहीं होता है जहाँ परिवर्तनशीलता होती है और वहीं पर अनित्यता भी होती है। इस तरह बौद्ध दर्शन अपने को विशेष और अनित्यता का पक्षधर मानता है और सामान्य को सत् के रूप में मानने वालों का विरोध करता है। बौद्ध दर्शन के अनुसार सामान्य का तो बोध ही नहीं हो सकता। यदि किसी के एक हाथ में पाँच अंगुलियाँ है और उनमें वह एक सामान्य अंगुली को भी देखना चाहता है तो यह कार्य वैसा ही होगा जैसा कि अपने सिर पर सींग को देखना अर्थात् सामान्य का बोध नहीं हो सकता है। सामान्य की सत्ता का खंडन करने के लिए बौद्ध दर्शन निम्न तर्क भी प्रस्तुत करता है—

(क) सामान्य की उत्पत्ति तो विशेषों से ही होती है। अतः सामान्य को विशेष से अलग नहीं देखा जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) सामान्य को एक माना जा सकता है अथवा अनेक ? यदि सामान्य एक है तो वह या तो व्यापक है या व्यापक नहीं है ?

(i) सामान्य यदि व्यापक है तो उसे दो वस्तुओं के बीच रहना चाहिए लेकिन वह तो दो में होता है, दो के बीच नहीं होता।

(ii) यदि वह एक है और व्यापक है तब तो उसे घट-घट में व्याप्त रहना चाहिए।

(iii) यदि वह व्यापक नहीं है, तब उसे विशेष कहा जा सकता है, सामान्य नहीं।

(ग) किसी भी वस्तु को अर्थक्रियाकारित्व से जाना जाता है। दूध दूहने का कार्य गोत्व से नहीं होता, बल्कि किसी विशेष गाय से होता है।

(घ) सामान्य को यदि एक न मानकर अनेक माना जाता है तब तो वह विशेष ही माना जाएगा, सामान्य नहीं। अतः विशेष की ही सत्ता है सामान्य की नहीं।

अद्वैत वेदान्त

इस दर्शन में सिर्फ ब्रह्म को ही सत्य माना गया है। ब्रह्म के अतिरिक्त जो भी हैं वे माया हैं, भ्रम हैं। ब्रह्म एक होता है। वह नित्य तथा अपरिवर्तनशील होता है। ये सभी सामान्य के लक्षण हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि अद्वैतवेदान्त सामान्य की सत्ता को स्वीकार करता है और सामान्य के अतिरिक्त जो भी है उनकी सत्ता में वह विश्वास नहीं करता। इतना ही नहीं बल्कि सामान्य की सत्ता को प्रमाणित तथा विशेष की सत्ता को असिद्ध करने के लिए विभिन्न तर्क भी प्रस्तुत करता है—

(क) पदार्थ या द्रव्य का द्रव्यत्व एक होता है, जिसे छोड़कर किसी द्रव्य को जाना नहीं जा सकता।

(ख) किसी विशेष वस्तु का विशेषत्व ही उसका स्वभाव होता है। अतः विशेषत्व यानी सामान्य के बिना उस विशेष वस्तु का बोध नहीं होता।

(ग) अनुवृत्ति या व्यावृत्ति क्रमशः सामान्य और विशेष की सूचक हैं। अनुवृत्ति से एकता तथा अभेद का बोध होता है जबकि व्यावृत्ति से अनेकता तथा भेद की जानकारी होती है। किन्तु किसी वस्तु के भेद अथवा निषेध को पूर्णतः जानने के लिए उस वस्तु के अतिरिक्त दुनिया की जितनी भी चीजें हैं, उन्हें जानने की जरूरत होती है। किसी सर्वज्ञ के लिए ही यह संभव है कि वह दुनिया की सारी चीजों को जाने। अतः सर्वज्ञता के अभाव में व्यावृत्ति या निषेध की सिद्धि न तो तर्क से हो सकती है और न किसी अनुभव से ही। तात्पर्य यह है कि विशेष की सत्ता प्रमाणित नहीं हो सकती है।

(घ) व्यावृत्ति को सत् माना जाए या असत् ? यदि यह असत् है तब तो आगे कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यदि यह सत् है तो प्रश्न बनता है कि यह एक है या अनेक। यदि व्यावृत्ति सत् है तो क्या सभी विशेष निषेधों में एक ही व्यावृत्ति है ? यदि व्यावृत्ति अनेक है, अलग-अलग हैं, तो इससे ऐसा समझा जा सकता है कि एक व्यावृत्ति में दूसरी, दूसरी में तीसरी और तीसरी में चौथी व्यावृत्ति है, तो इस तरह अनवस्था दोष आ जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन तर्कों के आधार पर अद्वैत वेदान्त सामान्य को प्रतिष्ठित करता है और विशेष की सत्ता को खण्डित करता है।

न्याय-वैशेषिक

ये दर्शन मानते हैं कि सामान्य सत्य है और विशेष भी। किन्तु दोनों ही अलग-अलग होते हैं, निरपेक्ष होते हैं। दोनों में स्वभावतः कोई सम्बन्ध नहीं होता। यदि ये सम्बन्धित होते हैं तो समवाय के कारण, जो कि एक नित्य सम्बन्ध होता है।

जैनदर्शन का समन्वयवाद

यह दर्शन उपरोक्त सभी दर्शनों के मतभेद को मिटाने का प्रयास करता है। पहले तो यह इन विचारों को एकांगी घोषित करता है। फिर नय की दृष्टि से इन्हें विभिन्न नयों का समर्थक मानता है। जैन दर्शन के अनुसार जो लोग सामान्य को ही सत् मानते हैं, वे संग्रहनय का समर्थन करते हैं। जो मत विशेष को महत्त्व देते हैं, वे पर्यायार्थिक नय के पक्षधर होते हैं तथा सामान्य-विशेष दोनों की ही सत्ताओं को स्वीकार करते हैं, वे नैगम नय को प्रधानता देते हैं। इस तरह इनके मत एकपक्षीय हैं। दरअसल सामान्य-विशेष दोनों ही सत्य होते हैं परन्तु अलग-अलग नहीं होते। दोनों निरपेक्ष नहीं बल्कि सापेक्ष होते हैं।

जैन दर्शन अपनी तत्त्वमीमांसा में यह मानता है कि वस्तु के अनन्त धर्म होते हैं (अनन्तधर्मकं वस्तु)। उन धर्मों में से कुछ तो स्थायी होते हैं और कुछ अस्थायी। स्थायी रहने वाले धर्म को गुण तथा अस्थायी धर्म को पर्याय कहते हैं। गुण की दृष्टि से वस्तु सामान्य होती है तथा पर्याय की दृष्टि से विशेष। अतः सामान्य और विशेष दोनों द्रव्य में साथ ही रहते हैं और एक दूसरे के सापेक्ष होते है, निरपेक्ष नहीं होते।

(क) जब कोई व्यक्ति 'मनुष्यत्व' कहता है तो उसके सामने मनुष्य के सभी लक्षण आ जाते हैं। साथ ही उसे मनुष्य का गाय, भैंस, हाथी आदि से भिन्नता का भी बोध हो जाता है। तात्पर्य यह है कि सामान्य के साथ विशेष का भी बोध हो जाता है।

(ख) यदि कोई व्यक्ति कहता है—'राम' तो यहाँ पर एक विशेष व्यक्ति का बोध होता है किन्तु राम कहने के साथ ही उसमें जो मनुष्यत्व है उसका भी बोध हो जाता है। अर्थात् विशेष के साथ ही सामान्य का भी बोध हो जाता है।

(ग) सामान्य और विशेष बिल्कुल भिन्न नहीं होते। सामान्य का विशेष के साथ जिस हद तक तादात्म्य होता है, उस हद तक दोनों अभिन्न होते हैं और जिस सीमा तक दोनों में तादात्म्य नहीं होता है, उस सीमा तक दोनों भिन्न होते हैं।

इस प्रकार सामान्य और विशेष दोनों ही सत्य होते हैं। दोनों एक साथ होते हैं। दोनों एक दूसरे पर निर्भर होते हैं, क्योंकि सामान्य के बिना विशेष का और विशेष के बिना सामान्य का बोध नहीं होता। जिस तरह कोई वस्तु सामान्य और विशेष दोनों ही रूपों में देखी जा सकती है उसी तरह वह नित्य और अनित्य भी समझी जा सकती है। गुण की दृष्टि से किसी वस्तु में नित्यता होती है और पर्यायों की दृष्टि से अनित्यता। इसी आधार पर कुछ उदाहरण प्रस्तुत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करके जैनदर्शन ने नित्यानित्यवाद को और स्पष्ट करने का प्रयास किया। दीपक और आकाश को क्रमशः अनित्य और नित्य माना जाता है। चूँकि दीपक जलता है, बुझता है इसलिए उसे अनित्य मानते हैं। आकाश सदा एक जैसा दिखाई पड़ता है इसलिए उसको नित्य कहते हैं। किन्तु इस सम्बन्ध में जैनाचार्य मानते हैं कि दीपक मात्र अनित्य नहीं बल्कि नित्य भी है। उसी तरह आकाश मात्र नित्य ही नहीं बल्कि अनित्य भी है। दीपक जब जलता है—प्रकाश हो जाता है और जब बुझ जाता है तो अन्धकार हो जाता है। इसको ऐसे भी कहा जा सकता है कि प्रकाश का होना दीपक का जल जाना है और अन्धकार का हो जाना दीपक का बुझ जाना। जैन दर्शन के अनुसार प्रकाश और अन्धकार अग्नि या तेजतत्व के दो पर्याय हैं जो एक के बाद दूसरे आते रहते हैं। अग्नि का अग्नित्व या तेजत्व हमेशा स्थिर रहता है सिर्फ पर्याय बदलते रहते हैं। इस तरह गुण की दृष्टि से दीपक नित्य है और पर्यायों की दृष्टि से अनित्य। आकाश का धर्म है आश्रय देना। वह हमेशा ही सब किसी को आश्रय देता है। आश्रय देना आकाश का गुण है। किन्तु वह किसी खास व्यक्ति या वस्तु को जो आश्रय देता है, जब व्यक्ति स्थान परिवर्तन करता है तो वह आश्रय बनता है, नष्ट होता है, विशेष व्यक्ति या वस्तु को आश्रय देना आकाश का पर्याय है। अतः यह भी प्रमाणित होता है कि आकाश अपने गुण की दृष्टि से नित्य तथा पर्याय की दृष्टि से अनित्य है।

काण्ट दर्शन

आधुनिक पाश्चात्य दर्शन की दो प्रसिद्ध धारायें हैं— बुद्धिवाद तथा अनुभववाद। आधुनिक चिन्तकों के सामने यह समस्या थी कि किस प्रकार दर्शन को मध्ययुगीन धार्मिक दासता से मुक्त किया जाए। इसी के समाधान स्वरूप इन दोनों दार्शनिक शाखाओं का प्रारम्भ हुआ। युग और समस्या में समता होते हुए भी बुद्धिवाद तथा अनुभववाद में भीषण विषमताएँ देखी जाती हैं, जिनके बीच सामंजस्यता स्थापित करने का सफल प्रयास आधुनिक युग के ही जर्मन दार्शनिक काण्ट ने किया है।

बुद्धिवाद

रेने देकार्त (Rene Descartes), जिन्हें आधुनिक पाश्चात्य दर्शन का जनक माना जाता है, ने ही बुद्धिवाद का श्रीगणेश किया। वे प्रसिद्ध दार्शनिक ही नहीं बल्कि गणितज्ञ और वैज्ञानिक भी थे। गणितज्ञ होने के कारण उन्हें गणित की निश्चयात्मकता में पूरा विश्वास था। वे ऐसा मानते थे–'गणित की नींव सुदृढ़ है और दर्शन की नींव बालू की बनी है।'[१] किन्तु ऐसा मानकर वे चुप नहीं रहे, अपितु दर्शन को सुदृढ़ता प्रदान करने का प्रयास किया।

देकार्त ने यह माना है कि सत्य के दो रूप होते हैं—स्वतःसिद्ध तथा प्रमाण जन्य। जो सत्य स्वतःसिद्ध होता है उसे प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है। क्योंकि वह प्रमाणों के द्वारा प्रमाणित नहीं होता है। वह तो स्वयं प्रमाणों को प्रमाणित करता है। प्रमाण किसी की सत्ता को प्रमाणित करते हैं या अप्रमाणित। प्रमाण का यह कार्य सविकल्प बुद्धि के द्वारा होता

१. पाश्चात्य दर्शन, डॉ० चन्द्रधर शर्मा, पृ० ८२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है और सविकल्पक बुद्धि का आधार वह ज्ञान होता है जो स्वतः सिद्ध होता है। यदि स्वतः सिद्ध ज्ञान न हो तो, एक के बाद दूसरे, तीसरे, चौथे प्रमाण आते रहेंगे। इसके फलस्वरूप अनवस्था दोष आ जायेगा। इसलिए बुद्धि के मौलिक नियमों को स्वतःसिद्ध निर्विकल्पक और अतीन्द्रिय माना जाता है। प्रमाण जनित ज्ञान का साधन सविकल्पक बुद्धि होती है। निर्विकल्पक या स्वतःसिद्ध सत्य के लिए कोई प्रणाली नहीं निश्चित की गई है किन्तु सविकल्पक सत्य के लिए निगमन पद्धति को अपनाया गया है। इस पद्धति में पूर्व प्रमाणित ज्ञान के आधार पर विश्लेषण करके किसी नए ज्ञान की प्राप्ति होती है।

इस तरह देकार्त ने यह प्रतिपादित किया है कि ज्ञान उस प्रत्यय के आधार पर होता है जो सहज, स्वाभाविक, सार्वभौम, अतीन्द्रिय या अनुभव निरपेक्ष (Apriori) तथा स्वतः सिद्ध होता है। साथ ही उन्होंने जिस प्रणाली को अपनाया है, वह निगमनात्मक (Deductive) तथा विश्लेषणात्मक (Analytic) है। इन्हीं मान्यताओं को बेनेडिक्ट्स स्पिनोजा (Benedictus Spinoza), लाइबनिज़ (Gottfried W. Leibnitz) आदि बुद्धिवादी दार्शनिकों के चिन्तन में प्रश्रय मिला है।

अनुभववाद

अनुभववाद के प्रतिष्ठापकों में पहला नाम जॉन लॉक (John Lock) का आता है। उन्होंने बुद्धिवाद की इस मान्यता को पूर्णतः गलत बताया है कि ज्ञान जिस साधन से प्राप्त होता है वह सहज एवं अतीन्द्रिय है। न कोई सहज प्रत्यय होता है और न स्वाभाविक ज्ञान ही। जो भी ज्ञान प्राप्त होते हैं, वे इन्द्रियानुभूति के माध्यम से होते हैं। अपने इस सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए उन्होंने सहज प्रत्यय का विभिन्न तर्कों के आधार पर खंडन किया है--

(क) यदि ज्ञान के स्रोत को हम सहज मान लेते हैं तो ऐसा कहा जा सकता है कि ज्ञान सम्बन्धी सही खोज करने से हम कतराते हैं।

(ख) यदि ज्ञान सहज है तो उसकी प्रतीति पागलों, मूर्खों तथा बालकों को भी होनी चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं होता।

(ग) सभी देश के लोगों को एक ही जैसा ज्ञान होना चाहिए परन्तु ऐसा भी नहीं होता।

(घ) यदि बुद्धि जन्मजात या स्वाभाविक होती, तो ईश्वरवाद, अनीश्वरवाद आदि धर्म के विभिन्न सिद्धान्त नहीं होते, धर्म सम्बन्धी एक ही मान्यता होती।

(ङ) नीतिशास्त्र में भी अलग-अलग सिद्धान्तों के समर्थन नहीं प्राप्त होते। सहज बुद्धि के आधार पर सबके विचार एक जैसे होते और जैसा विचार वैसा आचार, अर्थात् सभी व्यक्तियों के आचरण एक जैसे होते। किन्तु अलग-अलग लोगों के अलग-अलग आचार देखे जाते हैं।

उपरोक्त तर्कों के आधार पर लॉक ने यह प्रमाणित कर दिया कि सहज प्रत्यय या जन्मजात बुद्धि नहीं होती है। तब यह समस्या उठी कि आखिर ज्ञान होता कैसे है? इसका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर देते हुए लॉक ने कहा कि संवेदन (Sensetion) और स्वसंवेदन (Reflection) से विज्ञान (Ideas) बनते हैं और विज्ञान से ज्ञान की प्राप्ति होती है, अर्थात् हमारा ज्ञान इन्द्रियानुभव पर आधारित है। इस तरह बुद्धिवाद के विरोध में उन्होंने यह घोषित किया कि ज्ञान का आधार अतीन्द्रिय अनुभूति नहीं बल्कि इन्द्रियानुभूति है। सभी ज्ञान इन्द्रियानुभव-प्रसूत (Aposteriori) होते हैं तथा उन्हें प्राप्त करने की प्रणाली आगमनात्मक (Inductive) एवं संश्लेषणात्मक (Synthetic) होती है। इन्हीं मान्यताओं को जार्ज बर्कले (George Berkeley) तथा डेविड ह्यूम (David Hume) ने भी अंगीकार किया।

काण्ट का समन्वयवाद

अपने पूर्वगामियों को दो खेमों में बँटा देखकर इमान्युएल कॉण्ट (Immannual Kant) के मन में संभवतः दर्शन के उचित विकास की प्रक्रिया में बाधा उपस्थित होने की आशंका उत्पन्न हुई। फलतः उन्होंने दोनों विरोधी धाराओं (बुद्धिवाद तथा अनुभववाद) की आलोचना की, उनके दोषों पर प्रकाश डाला। तदोपरान्त ज्ञान के लिए बुद्धि और अनुभव दोनों की ही अनिवार्यता को सिद्ध किया। इस तरह उनका जो समन्वयवादी दर्शन प्रतिष्ठित हुआ उसे "आलोचनात्मक (Critical) अतीन्द्रिय (Transcendental) विज्ञानवाद (Idealism)" के नाम से जाना गया।" इस नाम का 'आलोचनात्मक' शब्द काण्ट के समन्वयवाद के पूर्व पक्ष को इंगित करता है जिसमें उन्होंने बुद्धिवाद तथा अनुभववाद के दोषों को बताया है। 'अतीन्द्रिय' शब्द बुद्धिवाद का प्रतीक है तथा 'विज्ञानवाद' अनुभववाद का द्योतक है। इन्हीं दो के बीच की सामंजस्यता काण्ट का समन्वयवाद है।

बुद्धिवाद तथा अनुभववाद की आलोचना करते हुए काण्ट ने कहा है कि इन दोनों में से किसी ने भी ज्ञान की उत्पत्ति, प्रामाण्य तथा सीमा को सही रूप में नहीं समझा है। लॉक ने यदि ज्ञान के क्षेत्र में काम किया भी है, तो वह सिर्फ मनोवैज्ञानिक है। काण्ट की दृष्टि में बुद्धिवाद में निम्नलिखित दोष है—

(क) यद्यपि बुद्धिवाद में एक ही पद्धति तथा एक ही आधार है, किन्तु बुद्धिवादी दार्शनिक अलग-अलग परिणामों पर पहुँचते हैं।

(ख) दर्शन में वस्तुवादी मान्यता है, जबकि गणित में नहीं है, तो भी बुद्धिवादी गणित पर आस्था रखते हैं।

(ग) रेखागणित जिसे बुद्धिवाद ने प्रधानता दी है, अनुभव की अपेक्षा रखता है।

(घ) बुद्धि को जिसकी स्पष्ट प्रतीति प्राप्त हो, वह सत्य है। बुद्धिवाद का ऐसा कहना भी बहुत तर्कपूर्ण नहीं है।

बुद्धिवाद ने पूर्णतः अनुभव की उपेक्षा की तथा बौद्धिक कल्पनाओं का सहारा लिया। इसलिए बुद्धिवाद का पर्यवसान अन्धविश्वास में हुआ[1]।

---

१. पाश्चात्य दर्शन, पृ० १५९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुनः काण्ट ने अनुभववाद पर आक्षेप किया—

(क) इन्द्रियानुभव में जो कुछ प्राप्त होते हैं वे संवेदन क्षणिक होते हैं, साथ ही अव्यवस्थित भी होते हैं। अतः उनसे कोई निश्चित ज्ञान की उपलब्धि नहीं हो सकती। बल्कि उन्हें ज्ञान की कोटि में लाना भी उचित नहीं लगता।

(ख) इन्द्रियानुभव यानी संवेदनों से तो ईश्वर और आत्मा जैसे अतीन्द्रिय तत्त्वों की जानकारी करना तो दूर है, उनसे बाह्य जगत् की सत्ता भी प्रमाणित नहीं हो सकती है।

(ग) न तो इन्द्रियानुभव से कार्य कारण जैसे सार्वभौम नियम बन सकते हैं और न इससे सन्देहवाद की स्थापना ही हो सकती है।

इस तरह अनुभववाद सिर्फ अनुभव को अपना आधार मानकर आत्मघाती बन गया है।

बुद्धिवाद और अनुभववाद को काण्ट ने एकांगी रूपों में पाया, किन्तु उन दोनों की कुछ मान्यताएँ उन्हें सत्य जान पड़ी। बुद्धिवाद ने यह प्रतिपादित किया है कि ज्ञान में जो सार्वभौमता, निश्चितता, असंदिग्धता एवं अनिवार्यता होती है उन्हें बुद्धि के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है, बिल्कुल ठीक है। अनुभववाद की यह धारणा कि कोई ज्ञान यथार्थ तभी हो सकता है जब उसकी सामग्री संवेदनों के माध्यम से प्राप्त हुई हो, सर्वथा उचित है। जब काण्ट को यह ज्ञात हुआ कि बुद्धिवाद और अनुभववाद पूर्ण रूप में गलत तो नहीं है बल्कि आंशिक रूप में सही है तब उन्होंने दोनों के सही अंशों को समन्वित करने का प्रयास किया। उन्होंने यह बताया कि किसी भी चीज की उत्पत्ति के लिए ये दो तत्त्व अनिवार्य होते हैं—स्वरूप (Form) तथा सामग्री (Matter)। उदाहरण स्वरूप हमारे सामने जो कुर्सी है, जिसमें चौड़ाई तथा ऊँचाई हैं—जिनसे उसका स्वरूप जाना जाता है और कुर्सी लकड़ी अथवा लोहे की बनी है यह उसका द्रव्य या उसकी सामग्री है। इसी तरह ज्ञान में भी स्वरूप होता है और सामग्री होती है। ज्ञान की सामग्री अनुभव से प्राप्त होती है तथा स्वरूप बुद्धि से। संवेदन से जो कुछ व्यक्ति पाता है, मात्र वे ही ज्ञान नहीं होते, जबतक कि वे बुद्धि के ढाँचे में ढल नहीं जाते। ज्ञान के लिए बुद्धि तथा अनुभव दोनों ही अपेक्षित है। अतः काण्ट ने अपने समन्वयवाद की प्रतिष्ठा करते हुए कहा—

"इन्द्रिय संवेदनों के बिना बुद्धि विकल्प पंगु या शून्य है और बुद्धि विकल्पों के बिना इन्द्रिय संवेदन अंध है[१]।

इस प्रकार जैन एवं काण्ट दोनों ने अपने-अपने देश एवं काल के अनुसार वैचारिक जगत् के मतभेदों को मिटाने का प्रयास किया है। वैचारिक सामंजस्यता हो जाने पर व्यावहारिक सद्भाव का समाज में विकास होना बहुत हदतक संभव होता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि समन्वयवाद का प्रतिपादन करके जैनाचार्यों एवं काण्ट ने समाज का बहुत बड़ा उपकार किया। किन्तु पाश्चात्य समाज ने काण्ट को जो श्रेय प्रदान किया, वह भारतीय समाज के द्वारा जैनाचार्यों को नहीं मिला। काण्ट ने बुद्धिवाद और अनुभववाद में जो सामंजस्यता स्थापित

१. पाश्चात्य दर्शन, पृ० १६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की, उसे एक ऐसी क्रान्ति के रूप में स्वीकार किया गया जैसी क्रान्ति भूगोल-खगोल के क्षेत्र में कॉपरनिकस के द्वारा लाई गयी थी।[१] काण्ट के कार्य को बहुत ही सराहा गया और उन्हें दर्शन जगत् में एक अतिश्रेष्ठ स्थान दिया गया। काण्ट से बहुत पहले जैनाचार्यों ने अपनी विशिष्ट चिन्तन प्रणाली से भारतीय समाज को वैचारिक समन्वय एवं व्यवहारिक सद्भाव के सूत्रों में बाँधने की प्रशंसनीय कोशिश की, लेकिन समाज से उन्हें आलोचना तथा अवहेलना के सिवा कुछ न मिला।

□

दर्शन विभाग
काशी विद्यापीठ
वाराणसी

१. कॉपरनिकस से पूर्व यह मान्यता थी—पृथ्वी स्थिर है और सूर्य चलता है किन्तु कॉपरनिकस ने यह प्रमाणित कर दिया है कि सूर्य स्थिर रहता है पृथ्वी चलती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org